Volume: 5 Issue: 11 Pages: 15-18



चूरू जिले की बीरानी कृषि के संदर्भ में चुनौतियां एवं संधारण निवारण

[*1] डॉ. जगना राम सुडा

[*1] प्राचार्य, भूगोल, टैगोर ग्रामोत्थान महाविद्यालय, रतनपुरा (चूरू) राजस्थान, भारत।

Article Info.
E-ISSN: 2583-6528
Impact Factor (QJIF): 8.4
Peer Reviewed Journal
Available online:
www.alladvancejournal.com

Received: 18/Oct/2026
Accepted: 19/Nov/2026

***Corresponding Author**
डॉ. जगना राम सुडा
प्राचार्य, भूगोल, टैगोर ग्रामोत्थान महाविद्यालय, रतनपुरा (चूरू) राजस्थान, भारत।

सारांश:
राजस्थान के उत्तरी-पश्चिमी भाग में स्थित चूरू जिला थार मरुस्थल का एक अत्यंत संवेदनशील एवं शुष्क कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्र है। यहाँ की लगभग 80 प्रतिशत से अधिक कृषि भूमि 'बीरानी' (पूर्णतः वर्षा आधारित) है, जहाँ सिंचाई के स्थायी साधनों का नितांत अभाव है। प्रस्तुत शोध पत्र चूरू जिले की बीरानी कृषि के समक्ष विद्यमान बहुआयामी चुनौतियों—जैसे मानसून की अनियमितता, अत्यधिक तापमान विचलन, बालुई मृदा की निम्न जलधारण क्षमता, पवन द्वारा मृदा अपरदन, लवणीयता, और घटती जैव-विविधता—का वैज्ञानिक व सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण करता है। साथ ही, इस अध्ययन में पारंपरिक जल संचयन प्रणालियों (कुंड, टाँका, खड़ीन), शुष्क भूमि कृषि तकनीकों, सूखा-रोधी फसल किस्मों, कृषि-वानिकी (खेजड़ी आधारित तंत्र) और आधुनिक नीतिगत हस्तक्षेपों के माध्यम से बीरानी कृषि के संधारणीय निवारण का एक समग्र ढाँचा प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य शब्द: बीरानी कृषि, चूरू जिला, शुष्क कृषि-पारिस्थितिकी, जल संचयन, मृदा अपरदन, खेजड़ी आधारित कृषि-वानिकी, संधारणीय विकास।

प्रस्तावना:

भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में वर्षा आधारित अथवा 'बीरानी' कृषि का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। देश के कुल शुद्ध बोए गए क्षेत्रफल का एक बड़ा हिस्सा आज भी मानसूनी वर्षा पर निर्भर है, किंतु जब बात पश्चिमी राजस्थान के मरुस्थलीय जिलों की आती है, तो बीरानी कृषि केवल एक उत्पादन प्रणाली न रहकर जीवनयापन की एक जटिल कला और संघर्ष बन जाती है। राजस्थान के शेखावाटी और मरुस्थलीय संक्रमण क्षेत्र में स्थित चूरू जिला इस पारिस्थितिकीय संघर्ष का सबसे स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

चूरू जिले का भौगोलिक विस्तार 27°24' से 29°00' उत्तरी अक्षांश और 73°40' से 75°41' पूर्वी देशांतर के मध्य है। यह जिला राज्य के कृषि-जलवायु क्षेत्र-IC (अति-शुष्क आंशिक सिंचित पश्चिमी मैदान) और क्षेत्र-IIA (अंतःस्थलीय जल निकासी के संक्रमणकालीन मैदान) के अंतर्गत आता है। यहाँ की स्थलाकृति मुख्य रूप से विशाल रेत के टीलों, अंतःटीला मैदानों और कठोर चूना युक्त स्तरों से निर्मित है। इस विशिष्ट भू-आकृति के कारण सतही जल का संचय प्राकृतिक रूप से अत्यंत कठिन हो जाता है।

चूरू जिले में कोई बारहमासी नदी प्रवाहित नहीं होती है। हालांकि जिले की दक्षिणी-पूर्वी सीमा के निकट कांतली नदी का अपवाह क्षेत्र ऐतिहासिक रूप से रहा है, परंतु वर्तमान में यह पूर्णतः लुप्तप्राय या मौसमी है। भूजल की स्थिति भी अत्यंत चिंताजनक है और उपलब्ध भूजल का बड़ा भाग खारा होने के कारण सिंचाई के लिए अनुपयुक्त है। परिणामस्वरूप, जिले के कृषकों के पास खरीफ ऋतु की मानसूनी वर्षा पर आधारित बीरानी कृषि ही आजीविका का प्रमुख आधार शेष रह जाती है।

चूरू जिले की बीरानी कृषि —
चुनौतियां एवं संधारण निवारण

1.1 बीरानी कृषि का अर्थ एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

स्थानीय राजस्थानी शब्दावली में 'बीरानी' उस कृषि भूमि को कहा जाता है जो पूर्णतः प्राकृतिक वर्षा पर निर्भर होती है और जहाँ कृत्रिम सिंचाई की कोई व्यवस्था उपलब्ध नहीं होती। इसके विपरीत सिंचित भूमि को 'चाही' या 'नहरी' कहा जाता है। चूरू जिले की कृषि परंपरा सदियों से प्रकृति के साथ अनुकूलन के सिद्धांत पर विकसित हुई है। यहाँ के किसानों ने सीमित संसाधनों और कठोर जलवायु के बावजूद बाजरा, मोठ, ग्वार, मूँग, तिल और रबी में चना तथा सरसों (नमी संरक्षित क्षेत्रों में) की खेती की विशिष्ट पद्धतियाँ विकसित की हैं।

ऐतिहासिक रूप से, बीरानी कृषि प्रणाली पशुपालन के साथ गहराई से जुड़ी रही है। फसल उत्पादन और पशुपालन का यह सहजीवी

संबंध (Crop-Livestock Integration) चूरू के ग्रामीण परिवारों को सूखे और अकाल के वर्षों में आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता रहा है। जब कम वर्षा के कारण अनाज का उत्पादन घट जाता था, तब फसलों के अवशेष (जैसे बाजरे की कड़बी और ग्वार का चारा) पशुधन के काम आते थे, और दूध, घी तथा ऊन की बिक्री से परिवार का भरण-पोषण होता था। परंतु विगत कुछ दशकों में जनसंख्या वृद्धि, जोतों के विखंडन, मशीनीकरण के अनियंत्रित विस्तार और जलवायु परिवर्तन के दबाव ने इस पारंपरिक संतुलन को गंभीर रूप से प्रभावित किया है।

1.2 शोध के उद्देश्य एवं कार्यप्रणाली

इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य चूरू जिले की बीरानी कृषि प्रणाली की वर्तमान स्थिति का समग्र मूल्यांकन करना, इसके समक्ष उत्पन्न होने वाली पर्यावरणीय, तकनीकी, आर्थिक और सामाजिक चुनौतियों की पहचान करना तथा दीर्घकालिक संधारण (Sustainability) के लिए व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करना है। अध्ययन में द्वितीयक आँकड़ों (कृषि विभाग, भूजल विभाग, भारतीय मौसम विज्ञान विभाग एवं केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान - CAZRI के प्रकाशनों) तथा क्षेत्रीय कृषि पद्धतियों के गुणात्मक विश्लेषण का उपयोग किया गया है।

चूरू जिले का कृषि-जलवायु एवं पारिस्थितिकीय परिदृश्य-

किसी भी क्षेत्र की कृषि प्रणाली को समझने के लिए वहाँ की जलवायु, मृदा संरचना और जल संसाधनों का सूक्ष्म विश्लेषण अनिवार्य है। चूरू जिला अपनी विषम जलवायु के लिए संपूर्ण भारत में जाना जाता है, जहाँ ग्रीष्म ऋतु में तापमान 50° सेल्सियस के पार चला जाता है और शीत ऋतु में पारा शून्य से नीचे (हिमांक बिंदु तक) गिर जाता है।

चूरू जिले की बीरानी कृषि — चुनौतियां एवं संधारण निवारण

भौतिक / कृषि पैरामीटर सामान्य स्थिति / मान बीरानी कृषि पर प्रत्यक्ष प्रभाव प्रमुख बीरानी फसलें बाजरा, ग्वार, मोठ, मूँग, तिल, चना (ताल क्षेत्रों में) कम पानी और उच्च ताप सहन करने वाली फसलें भूजल की गुणवत्ता अधिकांशतः लवणीय (Saline) एवं क्षारीय भूजल सिंचाई से मृदा बंजर होने का गंभीर खतरा

2.1 वर्षा का स्थानिक एवं कालिक वितरण

चूरू जिले में कुल वार्षिक वर्षा का लगभग 85 से 90 प्रतिशत भाग दक्षिण-पश्चिमी मानसून के माध्यम से जुलाई से सितंबर के मध्य प्राप्त होता है। यहाँ की सबसे बड़ी समस्या औसत वर्षा की कमी नहीं, बल्कि वर्षा का असमान वितरण है। कई बार पूरे मौसम की वर्षा केवल 4 से 5 तीव्र बौछारों में ही हो जाती है, जिससे पानी भूमि में रिसने के बजाय बह जाता है या तीव्र धूप में वाष्पीकृत हो जाता है। इसके अतिरिक्त, मानसून के आगमन में देरी और समय से पूर्व वापसी बीरानी फसलों के अंकुरण और दाना भरने की अवस्था को बुरी तरह प्रभावित करती है। यदि अगस्त के अंत या सितंबर के प्रारंभ में 15 से 20 दिनों का शुष्क अंतराल आ जाए, तो पूरी खरीफ फसल नष्ट होने के कगार पर पहुँच जाती है।

2.2 मृदा संरचना एवं उर्वरता की स्थिति

चूरू जिले की मृदा मुख्यतः वातोढ़ (Aeolian) निक्षेपों से बनी है, जिसमें रेत के कणों की प्रधानता (85% से 92% तक) होती है। मृत्तिका (Clay) और गाद (Silt) का अनुपात अत्यंत कम होने के कारण इस मिट्टी में नमी को रोके रखने की क्षमता (Water Holding Capacity) बहुत न्यून होती है। सामान्यतः यह मिट्टी केवल 60 से 90 मिमी प्रति मीटर गहराई तक ही नमी धारण कर पाती है। रासायनिक दृष्टि से चूरू की मृदा में जैविक कार्बन की मात्रा 0.1% से 0.25% के बीच पाई जाती है, जो अत्यंत निम्न है। नाइट्रोजन और फास्फोरस की भारी कमी के साथ-साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे जस्ता और लोहा का अभाव भी व्यापक रूप से देखा जाता है। इसके अलावा, मिट्टी की सतह से 1 से 2 मीटर की गहराई पर कैल्शियम कार्बोनेट की कठोर परत (Hard Pan / कंकड़ परत) पाई जाती है, जो जड़ों के गहरे विकास और जल के अंतःस्रवण में बाधा उत्पन्न करती है।

बीरानी कृषि की प्रमुख चुनौतियां:

चूरू जिले के बीरानी कृषकों को उत्पादन से लेकर विपणन तक अनेक जटिल चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इन चुनौतियों को मुख्य रूप से जलवायु जनित, मृदा एवं जल संसाधन संबंधी, जैविक, तथा सामाजिक-आर्थिक श्रेणियों में विभाजित करके समझा जा सकता है।

3.1 जलवायु परिवर्तन एवं मौसमी चरम घटनाएँ

विगत दो दशकों में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव चूरू जिले में स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुए हैं। ग्रीष्म ऋतु में लू की आवृत्ति और तीव्रता में वृद्धि हुई है, जिससे मिट्टी की ऊपरी परत की नमी पूरी तरह समाप्त हो जाती है और सूक्ष्मजीवों की सक्रियता घट जाती है। दूसरी ओर, शीत ऋतु में अचानक गिरने वाले तापमान और पाले की घटनाओं ने रबी की बीरानी फसलों, विशेषकर चना और तारामीरा को भारी नुकसान पहुँचाया है। बेमौसम ओलावृष्टि और मानसून के दौरान बादल फटने जैसी तीव्र वर्षा की घटनाएँ भी अब असामान्य नहीं रह गई हैं, जो कटाई के लिए तैयार खड़ी फसलों को चौपट कर देती हैं।

3.2 पवन द्वारा मृदा अपरदन एवं रेत के टीलों का स्थानांतरण

मई और जून के महीनों में चूरू जिले में 30 से 50 किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से शुष्क और धूल भरी आँधियाँ (आँधी-तूफान) चलती हैं। वनस्पति आवरण की कमी और गहरी जुताई के कारण मिट्टी के बारीक और उपजाऊ कण हवा के साथ उड़ जाते हैं। वैज्ञानिक अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि पवन अपरदन के कारण प्रति वर्ष प्रति हेक्टेयर कई टन उपजाऊ ऊपरी मृदा नष्ट हो जाती है। यह उड़ती हुई रेत न केवल खेतों की उर्वरता को कम करती है, बल्कि नव-अंकुरित बीरानी फसलों के कोमल पौधों को रेत से ढककर या घर्षण द्वारा नष्ट भी कर देती है। इसके अतिरिक्त, गतिशील रेत के टीले उपजाऊ अंतःटीला मैदानों (तालों) को पाटकर उन्हें अनुपजाऊ बना रहे हैं।

3.3 जल संकट एवं भूजल की लवणीयता

चूरू जिले में सिंचाई के लिए भूजल का दोहन एक दोधारी तलवार साबित हुआ है। जिले के राजगढ़, तारानगर, सरदारशहर, सुजानगढ़ और रतनगढ़ क्षेत्रों में भूजल स्तर तेजी से नीचे गिर रहा है। इससे भी बड़ी समस्या भूजल में घुले हुए लवणों की अधिकता है। जब किसान सूखे के समय फसल बचाने के लिए इस खारे पानी से 'जीवन रक्षक सिंचाई' करते हैं, तो मिट्टी की सतह पर सोडियम और क्लोराइड के लवण जमा हो जाते हैं। कुछ ही वर्षों में उपजाऊ बीरानी भूमि 'लवणीय-क्षारीय' होकर बंजर बन जाती है।

3.4 पारंपरिक कृषि-वानिकी तंत्र (ओरण एवं गोचर) का ह्रास

थार मरुस्थल की बीरानी कृषि का सुरक्षा कवच माने जाने वाले 'खेजड़ी', 'रोहिड़ा' और 'बेर' के वृक्षों की संख्या में निरंतर कमी आ रही है। ट्रैक्टरों से बड़े पैमाने पर खेती करने की सुविधा के लिए किसानों द्वारा खेतों की मेड़ों और बीच से पेड़ों को काटा जाना एक गंभीर पारिस्थितिकीय भूल सिद्ध हो रही है। खेजड़ी का वृक्ष वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करता है, अपनी गहरी जड़ों से निचली परतों से नमी खींचता है और तेज हवाओं की गति को कम

करता है। इसके अतिरिक्त, गाँवों की सामुदायिक चरागाह भूमि (गोचर और ओरण) पर अतिक्रमण और अनियंत्रित चराई के कारण प्राकृतिक वनस्पति का क्षरण हुआ है, जिससे पशुपालन पर दबाव बढ़ा है।

चूरू जिले में बीरानी कृषि की प्रमुख चुनौतियां एवं उनके बहुआयामी प्रभाव चुनौती का क्षेत्र मुख्य कारण कृषि एवं आजीविका पर प्रभाव जलवायु एवं वर्षा मानसून की अनियमितता, लंबे शुष्क अंतराल, तापमान चरम सीमाएँ फसल विफलता, उत्पादन में भारी अस्थिरता, बुवाई में देरी मृदा क्षरण तेज ग्रीष्मकालीन हवाएँ, गहरी ट्रैक्टर जुताई, वनस्पति आवरण का अभाव उपजाऊ ऊपरी परत का ह्रास, जैविक कार्बन में भारी कमी जल संसाधन सतही जल संचय की कमी, भूजल का अति-दोहन एवं लवणीयता जीवन रक्षक सिंचाई का अभाव, मृदा का लवणीकरण जैविक कारक दीमक, सफेद लट, कातरा कीट, नीलगाय व आवारा पशु जड़ों और अंकुरों को भारी क्षति, फसल सुरक्षा लागत में वृद्धि आर्थिक एवं नीतिगत लघु एवं सीमांत जोतें, गुणवत्तापूर्ण बीजों की कमी, बाजार मूल्य अस्थिरता ऋणग्रस्तता, युवाओं का शहरों की ओर पलायन, कृषि से मोहभंग शोध पत्र: चूरू जिले की बीरानी कृषि — चुनौतियां एवं संधारण निवारण

3.5 जैविक चुनौतियां: कीट, रोग एवं वन्यजीव

शुष्क परिस्थितियों में कीटों का प्रकोप बीरानी फसलों के लिए एक बड़ी चुनौती है। बलुई मिट्टी में 'सफेद लट' और 'दीमक' का प्रकोप अत्यंत भयावह रूप ले लेता है, जो मूँगफली, बाजरा, मोठ और ग्वार की जड़ों को काटकर पूरी फसल सुखा देते हैं। मानसून की पहली वर्षा के साथ 'कातरा' कीट का प्रकोप नव-अंकुरित फसलों को कुछ ही दिनों में चट कर जाता है। इसके अतिरिक्त, मोठ और मूँग में पीला मोजेक वायरस तथा बाजरे में हरित बाली रोग और अर्गट रोग उपज को भारी नुकसान पहुँचाते हैं। हाल के वर्षों में नीलगाय (रोजड़ा) और आवारा पशुओं द्वारा फसलों को नष्ट किए जाने की समस्या ने किसानों की कमर तोड़ दी है, जिससे खेतों की तारबंदी पर भारी व्यय करना पड़ रहा है।

3.6 सामाजिक-आर्थिक एवं संस्थागत बाधाएँ

चूरू जिले में भूमि जोतों का आकार निरंतर छोटा हो रहा है। पारिवारिक विभाजन के कारण खेत संकरी पट्टियों में बंट गए हैं, जिससे आधुनिक कृषि यंत्रों का उपयोग और जल संचयन संरचनाओं का निर्माण कठिन हो गया है। अधिकांश बीरानी किसान आर्थिक रूप से कमजोर हैं और जोखिम उठाने की क्षमता नहीं रखते; अतः वे प्रमाणित और उन्नत किस्म के बीजों के स्थान पर घर के पुराने बीजों का उपयोग करते हैं। फसल बीमा योजनाओं (जैसे प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना) में फसल कटाई प्रयोगों की जटिलताओं और समय पर मुआवजा न मिलने की शिकायतें भी किसानों का मनोबल गिराती हैं। इसके साथ ही, ग्वार और मोठ जैसी फसलों के बाजार भावों में अत्यधिक उतार-चढ़ाव (सट्टेबाजी के कारण) किसानों को उचित लाभ से वंचित रखता है।

संधारण निवारण के वैज्ञानिक एवं पारंपरिक उपाय-

चूरू जिले की बीरानी कृषि को संकट से उबारने के लिए एक ऐसे समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है जो पारंपरिक देशज ज्ञान और आधुनिक कृषि विज्ञान का समन्वय करे। संधारणीय कृषि का अर्थ है प्राकृतिक संसाधनों—मृदा, जल और जैव-विविधता—का संरक्षण करते हुए वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए स्थिर उत्पादन सुनिश्चित करना।

4.1 स्व-स्थाने एवं बाह्य-स्थाने वर्षा जल संचयन

शुष्क क्षेत्रों में जल प्रबंधन का मूल मंत्र है—"वर्षा की हर बूंद को जहाँ गिरे, वहीं सहेजना।" इसे दो स्तरों पर लागू किया जाना आवश्यक है:

स्व-स्थाने नमी संरक्षण इसके अंतर्गत वर्षा के जल को खेत की मिट्टी में ही अधिक से अधिक समय तक रोके रखने के उपाय किए जाते हैं। इसमें 'समोच्च जुताई', 'मेड़बंदी', और 'रिज एवं फरो' विधि अत्यंत प्रभावी हैं। मानसून से पूर्व खेतों की गहरी जुताई (मई-जून में तीन वर्ष में एक बार) करने से भूमि की कठोर परत टूटती है और वर्षा जल का अंतःस्रवण बढ़ता है। इसके अतिरिक्त, फसल अवशेषों (ग्वार का भूसा, बाजरे के डंठल) को मिट्टी की सतह पर बिछाकर 'पलवार' करने से मिट्टी से होने वाले वाष्पीकरण को 30% से 40% तक कम किया जा सकता है।

बाह्य-स्थाने जल संचयन: खेत के एक निचले कोने में 'खेत तलाई' या पारंपरिक 'कुंड' और 'टाँका' का निर्माण करके अतिरिक्त वर्षा जल को एकत्रित किया जाना चाहिए। प्लास्टिक लाइनिंग या सीमेंट-चूना प्लास्टर युक्त खेत तलाई में संचित जल का उपयोग मानसून के लंबे शुष्क अंतराल के दौरान फव्वारा या टपक सिंचाई के माध्यम से जीवन रक्षक सिंचाई के लिए किया जा सकता है। शोध से सिद्ध हुआ है कि फूल आने या दाना भरने की अवस्था में दी गई मात्र एक जीवन रक्षक सिंचाई बीरानी फसलों की उपज में 40% से 60% तक वृद्धि कर सकती है।

खड़ीन प्रणाली का पुनरुद्धार: चूरू के अंतःटीला निचले मैदानों (जिन्हें स्थानीय भाषा में 'ताल' कहा जाता है, जैसे ताल छापर क्षेत्र) में 'खड़ीन' तकनीक को अपनाया जा सकता है। इसमें ढलान वाले क्षेत्र के निचले सिरे पर मिट्टी का बांध बनाकर वर्षा जल को रोका जाता है। इससे भूमि में गहरी नमी संचित होती है और लवण नीचे चले जाते हैं, जिससे खरीफ के बाद रबी में चना और सरसों की फसल बिना सिंचाई के ली जा सकती है।

4.2 मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन एवं अपरदन नियंत्रण

मरुस्थलीय मिट्टी की उत्पादकता बढ़ाने के लिए मृदा अपरदन को रोकना और जैविक कार्बन में वृद्धि करना प्राथमिक आवश्यकता है:

वायु अवरोधक पट्टियां: खेतों की पश्चिमी और दक्षिण-पश्चिमी सीमाओं पर (जहाँ से तेज हवाएँ आती हैं) तीन पंक्तियों में पेड़ों और झाड़ियों की बाड़ लगानी चाहिए। बाहरी पंक्ति में झाड़ियाँ (जैसे कैर, फोग, खींप या अरंडी) और भीतरी पंक्तियों में खेजड़ी, रोहिड़ा, नीम या बबूल के पेड़ लगाने से हवा की गति 50% तक कम हो जाती है और रेत का उड़ना रुक जाता है।

पट्टीदार खेती: पूरे खेत में एक ही फसल बोने के बजाय हवा की दिशा के लंबवत पट्टियों में फसलें बोनी चाहिए। उदाहरण के लिए, बाजरे (ऊँची फसल) की 6-8 कतारों के साथ मोठ या मूँग (ज़मीन को ढकने वाली दलहनी फसल) की 10-12 कतारें बोने से मिट्टी को सीधा हवा के वेग से सुरक्षा मिलती है।

न्यूनतम जुताई: बार-बार ट्रैक्टर से गहरी जुताई करने से मिट्टी के कण ढीले पड़ जाते हैं और हवा से उड़ जाते हैं। अतः बुवाई के लिए केवल आवश्यक न्यूनतम जुताई (जैसे सीड ड्रिल से सीधी बुवाई) को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

जैविक खाद एवं जीवाणु कल्चर: रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करते हुए गोबर की सड़ी हुई खाद (FYM), वर्मीकम्पोस्ट और बकरी की मेंगनी की खाद का उपयोग बढ़ाना चाहिए। दलहनी फसलों (मोठ, मूँग, ग्वार, चना) की बुवाई से पूर्व बीजों को राइजोबियम (Rhizobium) और फॉस्फेट घोलक जीवाणु (PSB) कल्चर से उपचारित करने से न केवल नाइट्रोजन स्थिरीकरण बढ़ता है, बल्कि मृदा की उर्वरता में भी स्थायी सुधार होता है।

4.3 शुष्क भूमि हेतु उन्नत एवं सूखा-रोधी फसल किस्मों का चयन

चूरू जिले की परिवर्तित जलवायु के अनुरूप ऐसी फसल किस्मों का चयन अत्यंत आवश्यक है जो कम अवधि में पककर तैयार हो जाएँ और सूखे तथा उच्च तापमान को सहन कर सकें। केंद्रीय शुष्क क्षेत्र

अनुसंधान संस्थान, जोधपुर और स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर द्वारा चूरू जैसे शुष्क क्षेत्रों के लिए अनेक उत्कृष्ट किस्में विकसित की गई हैं।

चूरू जिले की बीरानी कृषि हेतु अनुशंसित प्रमुख सूखा-रोधी फसल किस्में शोध पत्र: चूरू जिले की बीरानी कृषि — चुनौतियां एवं संधारण निवारण फसल का नाम अनुशंसित उन्नत किस्में पकने की अवधि (दिन) प्रमुख विशेषताएँ बाजरा HHB-67 धारित), RHB-177, MPMH-17, राज-171 60 – 75 दिन अति-अल्पकालीन, सूखा-रोधी एवं हरित बाली रोग प्रतिरोधी मोठ RMO-40, RMO-225, RMO-257, काजरी मोठ-2 60 – 65 दिन कम वर्षा में भी उच्च उपज, तीव्र फैलाव द्वारा भूमि को ढकने वाली ग्वार RGC-936, RGC-1003, RGC-1066, HG-563 80 – 90 दिन सूखा सहनशील, गोंद (Gum) की उच्च मात्रा, जीवाणु अंगमारी रोधी मूँग IPM 02-3, GM-4, SML-668, काजरी मूँग-1 60 – 65 दिन पीला मोजेक वायरस प्रतिरोधी, एक साथ पकने वाली फलियाँ तिल RT-125, RT-346, RT-351 75 – 85 दिन अर्ध-शुष्क व शुष्क क्षेत्रों हेतु उपयुक्त, उच्च तेल प्रतिशत चना (रबी) RSG-888, GNG-1581 (गणगौर), CSJD-884 115 – 125 दिन संरक्षित नमी (बीरानी) हेतु सर्वोत्तम, उकठा रोग प्रतिरोधी

4.4 कृषि-वानिकी एवं चारागाह विकास

चूरू जिले की पारिस्थितिकी में अकेले फसल उत्पादन पर निर्भर रहना सदैव जोखिम भरा रहता है। अतः 'खेजड़ी आधारित कृषि-वानिकी' को पुनर्जीवित करना अनिवार्य है। प्रति हेक्टेयर खेत में 40 से 60 खेजड़ी के वृक्षों का होना बीरानी फसलों के लिए वरदान है। खेजड़ी की छाया में उगने वाली फसलों (जैसे बाजरा, मोठ और ग्वार) की उपज खुले खेत की तुलना में अधिक पाई गई है, क्योंकि वृक्ष के नीचे सूक्ष्म जलवायु ठंडी और नम रहती है। इसके साथ ही, खेजड़ी से प्राप्त 'सांगरी' (सब्जी) और 'लूंग' (पौष्टिक चारा) किसानों को अतिरिक्त आय प्रदान करते हैं।

इसी प्रकार, अनुपजाऊ रेतीले टीलों और सामुदायिक गोचर भूमि पर 'वन-चरागाह प्रणाली' विकसित की जानी चाहिए। इसमें खेजड़ी, बेर, और इजरायली बबूल के साथ-साथ पौष्टिक मरुस्थलीय घासें जैसे 'सेवण', 'धामण'और 'भुरट' उगाई जानी चाहिए। यह प्रणाली न केवल रेत के टीलों को स्थिर करती है, बल्कि सूखे के वर्षों में पशुधन के लिए चारे की निरंतर आपूर्ति भी सुनिश्चित करती है।

4.5 समन्वित कृषि प्रणाली

लघु और सीमांत किसानों की आय को स्थिर करने के लिए समन्वित कृषि प्रणाली मॉडल सबसे प्रभावी है। चूरू जिले के लिए उपयुक्त IFS मॉडल में निम्नलिखित घटकों का समावेश होना चाहिए:

फसल उत्पादन (50% क्षेत्र): अंतःफसली खेती जैसे बाजरा + मोठ (2:1 अनुपात) या ग्वार + तिल का संयोजन।

पशुपालन (डेयरी एवं भेड़-बकरी पालन): राठी और थारपारकर जैसी देशी गायों तथा मारवाड़ी भेड़-बकरियों का पालन, जो कम चारे-पानी में भी उच्च उत्पादकता देती हैं।

शुष्क बागवानी: खेत के एक भाग में कम पानी चाहने वाले फलदार वृक्ष जैसे बेर (गोला व सेब किस्म), अनार (भगवा किस्म), आंवला, लसोड़ा (गूंदा) और कैर का रोपण। टपक सिंचाई और खेत तलाई के जल से इन बगीचों को आसानी से पाला जा सकता है।

शोध पत्र: चूरू जिले की बीरानी कृषि — चुनौतियां एवं संधारण निवारण औषधीय एवं मसाला फसलें: सनाय, एलोवेरा (ग्वारपाठा), जीरा और ईसबगोल की खेती (जहाँ हल्की सिंचाई उपलब्ध हो), जिनका बाजार मूल्य काफी ऊँचा होता है।

उपसंहार:

चूरू जिले की बीरानी कृषि केवल एक आर्थिक गतिविधि नहीं, बल्कि थार मरुस्थल के प्रतिकूल वातावरण में मानव जीवन की जिजीविषा और पारिस्थितिकीय अनुकूलन का जीवंत प्रतीक है। यद्यपि जलवायु परिवर्तन, अनियमित मानसून, तीव्र पवन अपरदन, मृदा की निम्न उर्वरता और भूजल की लवणीयता ने इस कृषि प्रणाली के समक्ष गंभीर चुनौतियां खड़ी कर दी हैं, तथापि वैज्ञानिक प्रबंधन और पारंपरिक ज्ञान के समन्वय से इन चुनौतियों का संधारणीय निवारण पूर्णतः संभव है।

चूरू में बीरानी कृषि के संधारण के लिए 'एकल फसल' प्रणाली के स्थान पर 'समन्वित कृषि प्रणाली' को अपनाना होगा, जिसमें शुष्क भूमि फसलें, खेजड़ी आधारित कृषि-वानिकी, पशुपालन और वर्षा जल संचयन एक-दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करें। स्व-स्थान नमी संरक्षण, सूखा-रोधी अल्पकालीन किस्मों का उपयोग, जैविक कार्बन संवर्धन, और किसान उत्पादक संगठनों के माध्यम से मूल्य संवर्धन इस दिशा में मील का पत्थर साबित हो सकते हैं। यदि नीति निर्माता, कृषि वैज्ञानिक और कृषक समुदाय मिलकर इस बहुआयामी रणनीति को क्रियान्वित करें, तो चूरू जिले की बीरानी भूमि न केवल जलवायु-सहिष्णु बनेगी, बल्कि मरुस्थलीय कृषकों की समृद्धि और खाद्य सुरक्षा का भी सशक्त आधार बनेगी।

संदर्भ सूची:

1. केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (CAZRI). (2020). शुष्क क्षेत्र कृषि की उन्नत तकनीकें एवं मरुस्थल प्रबंधन. जोधपुर: भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR).
2. कृषि विभाग, राजस्थान सरकार. (2022). 2. राजस्थान कृषि सांख्यिकी प्रतिवेदन एवं जिला कृषि योजना: चूरू. जयपुर: कृषि आयुक्तालय। शर्मा, आर. के., एवं पारीक, बी. एल. (2019).
3. पश्चिमी राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में वर्षा जल संचयन एवं मृदा नमी संरक्षण की पारंपरिक व आधुनिक विधियाँ. शुष्क भूमि कृषि शोध पत्रिका, 14(2), 45-58.
4. स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय. (2021). अति-शुष्क आंशिक सिंचित पश्चिमी मैदान हेतु सस्य पैकेज ऑफ प्रैक्टिसेज. बीकानेर: प्रसार शिक्षा निदेशालय।
5. केंद्रीय भूजल बोर्ड. (2023). भूजल परिदृश्य एवं जल गुणवत्ता